

□□□□ □□□□□

जनसत्ता 9 मई, 2014 : सोलहवीं लोकसभा के चुनाव अपने आखिरी चरण में है, लेकिन अभी तक किसी पार्टी ने सामाजिक विकास को लेकर कोई ठोस बहस या तथ्य पर आधारित चर्चा करने की जरूरत नहीं समझी है। किसी भी पार्टी का घोषणापत्र उठा लें, कबात पर सभी अपना दावा करते नजर आएं- आर्थिक और समेकित विकास। इन भारी-भरकम शब्दों के इस्तेमाल में आपके कोई कटौती नहीं मल्लिगी, चाहे वह मोदी प्रचारित गुजरात मॉडल हो या फिर कांग्रेस समर्थित नव-उदारीकृत अर्थव्यवस्था।

मोदी का कहना है कि उन्होंने गुजरात में आर्थिक विकास केली जो किया है वही मॉडल वे सारे देश में लाएंगे, क्योंकि गुजरात विकास के मानकों पर सफल हुआ है। लेकिन वे इस पर चर्चा क्यों नहीं करते कि वहां सामाजिक विकास के आंकड़े अन्य प्रदेशों से काफी गं-गुजरे हैं। क्या उन्होंने आर्थिक विकास की परिभाषा और उनके मानक बदल दिए हैं या फिर वे इस मुद्दे को उठाना ही नहीं चाहते। अगर स्वास्थ्य की बात करें तो महाराष्ट्र, तमिलनाडु की तुलना में गुजरात में मातृ-शिशु मृत्युदर और पांच साल से कम उम्र के बच्चों की मृत्युदर ज्यादा है। कुपोषण का स्तर भी संतोषजनक नहीं है। स्वास्थ्य के लगभग सभी मानकों पर गुजरात पूरे भारत की औसत दर से नीचे है। अन्य प्रदेशों की तुलना में गुजरात के अल्पसंख्यक और दलित समूहों की स्थिति भी अच्छी नहीं है। गुजरात का उदाहरण यह समझने के लिए पर्याप्त है कि राजनीति में नागरिक स्वास्थ्य सेवा जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर विमर्श न के बराबर है।

किसी भी देश के समग्र विकास का मॉडल स्वास्थ्य और शिक्षा के बिना अधूरा माना जाता है। ये दो ऐसे आधार स्तंभ हैं, जिन पर किसी भी देश के न केवल वर्तमान विकास के करक देखे जाते हैं, बल्कि आने वाले समय में होने वाले विकास के बीज सन्निहित होते हैं। अर्थशास्त्रियों द्वारा समेकित विकास बनाम आर्थिक वृद्धि की बहस का अधिक से अधिक स्पष्टीकरण इन्हीं दोनों कसौटियों पर रख कर देखा जाता है। और जब विकास के साथ मूलभूत आवश्यकताओं की जवाबदेही और बेहतर जदिगी जीने के अधिकार जुड़ जाते तो जाहिर-सी बात है कि विकासशील देशों के लिए उनके विकास के मायने सरिफ आर्थिक वृद्धि की कपूर्व निर्धारित दर प्राप्त करने तक सीमित नहीं रह जाने चाहिए। भारत में नागरिकों के स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याओं के निस्तारण पर कमोबेश यही स्थिति है। इस संदर्भ में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमरत्य सेन का कहना है कि संसद से लेकर मीडिया की मुख्यधारा, यहां तक कि व्यापक पहुंच वाले सोशल मीडिया में स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं, उनसे जुड़ी योजनाओं की सफलता (वफिलता), करण और तमाम अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों पर होने वाली चर्चा न के बराबर है।

हम विकास के जसि प्रारूप की बात भारत जैसे देश के संदर्भ में करते हैं, स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति के मद्देनजर वह कतिना सही या अनुकूल है? उसके लिए स्वास्थ्य संबंधी उपलब्धियों के साथ वफिलताओं पर भी विचार करना समीचीन होगा। कतरफतो पोलियो मुक्त देश बन जाने पर गर्व किया जाता है, पर इस बात पर ध्यान नहीं जाता कि ऐसी अन्य बीमारियों के उन्मूलन में हम बांग्लादेश से भी पीछे क्यों हैं। विश्व बाल स्वास्थ्य पर आधारित यूनिसेफ की ताजा रिपोर्ट में भारत की टीकरण दर विश्व की नमिनतम दरों में से क है। सरिफ खसरा और पोलियो को हटा दें तो कुछ काफी पछि। अफ्रीकी देश, अफगानिस्तान, हैती, इराक और पापुआ न्यू गिनी ही इस मामले में भारत से नीचे हैं। बांग्लादेश जैसे विकासशील देश ने तो इस क्षेत्र में पंचानबे प्रतशित तक टीकरण दर हासिल कर ली है।

चिंताजनक बात यह है कि हम योजनाओं की आ में इन बातों पर चर्चा न के बराबर करते हैं और इसलिये कोई ठोस कदम भी नहीं उठा पाते। क आदर्श जनतंत्र में योजनाओं की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि लोगों के बीच हम मुद्दों को कतिना उठाते और उन पर कैसे बहस करते हैं।

अगर लोक-स्वास्थ्य से जुड़े संस्थानों द्वारा प्रकृति शोधपत्रों या आयोजित संगोष्ठियों को छोड़ें, तो राजनीतिक विमर्श के क्षेत्र में इसका बलिकूल अभाव है। वह सक्ते हैं कि आजादी के बाद से कुछ मामलों में हमने सुधार किया है, जैसे कि कुपोषण से बच्चों में होने वाले क्लोस्ट्रिड और मरास्मस जैसे रोगों के निंत्रित किया है, शिशु मृत्युदर और वयस्क मृत्युदर में भी कमी आई है, लेकिन अब भी शिशु मृत्युदर चौवालीस प्रतिशत हजार जन्म, और मातृ मृत्युदर दो सौ बारह प्रतिशत कलाख जन्म पर है, जो सरकार द्वारा चलाई गई तमाम योजनाओं (जननी सुरक्षा योजना, समेकित शिशु विकास योजना आदि) के क्रियान्वयन के खामियों के उजागर करती है। यूनिसेफ के ताजा रिपोर्ट के मुताबिक भुखमरीग्रस्त बच्चों की तादाद और महिलाओं के कुपोषण में भारत सबसे आगे है।

इस बाबत 1996 में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (AIIMS) के तत्कालीन नदिशक वी. रामालगिस्वामी ने अपने एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन में बताया था कि दक्षिण एशिया के देशों और खासकर भारत में बच्चों और महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति उनके कुपोषण और खराब स्वास्थ्य में एक महत्त्वपूर्ण कारक है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण की रिपोर्टें भी इस बात की पुष्टि करती हैं कि बच्चों का स्वास्थ्य उनकी माताओं के स्वास्थ्य से जुड़े आर्थिक और सामाजिक कारकों पर निर्भर करता है।

वर्ल्ड स्वास्थ्य संगठन की इंटर-जेंसी ग्रुप रिपोर्ट 2013 और यूनिसेफ ने भारत के मातृ मृत्युदर के समय आधारित प्रचलन (ट्रेंड) के आधार पर एक सौ अस्सी देशों में एक सौ छब्बीसवें स्थान पर रखा है। उनके हिसाब से हमारे यहां महिलाओं में रक्ताल्पता (ANI) का स्तर भी चिंताजनक है 5.7 करोड़ महिलाओं में से 3.2 करोड़ इस समस्या से ग्रस्त हैं। इसकी वजह से प्रसव के दौरान उचित और शीघ्र उपचार न मिलने पर मां और बच्चे दोनों का जीवन खतरे में पड़ सकता है।

अगला सवाल स्वास्थ्य सेवाओं पर होने वाले संस्थागत व्यय का है, जो कि पिछले बीस सालों के दौरान सकल घरेलू उत्पाद के एक प्रतिशत तक सीमा तक रहा। यूपीए सरकार ने 2004 में दावा किया था कि अपने सामान्य न्यूनतम कार्यक्रम के तहत स्वास्थ्य पर होने वाले खर्च के जीडीपी के दो से तीन प्रतिशत अनुपात तक ले जागी। लेकिन हुआ इसका उल्टा, यह अनुपात और कम, यानी 0.9 प्रतिशत पर पहुंच गया। जबकि विश्व स्तर पर यह औसत छह प्रतिशत से अधिक है। केवल नौ देश ऐसे हैं, जिनका स्वास्थ्य खर्च भारत से थोड़ा कम या कमोबेश उसके बराबर है।

दूसरी बात, जो इससे भी महत्त्वपूर्ण है कि स्वास्थ्य सेवाओं के निस्तारण में सरकार का एक जम्मेवार संस्था के रूप में व्यय करना। यह इसलिये चर्चा का विषय होना चाहिए कि भारत की ज्यादातर जनता ग्रामीण है, यहां की स्वास्थ्य समस्याएं विकसित देशों से अलग हैं। हमारे यहां गरीबी, आय में असमानता, स्वास्थ्य सेवाओं पर उनकी आय के अधिकतर भाग का खर्च होना, स्वास्थ्य सेवाओं के निस्तारण में क्षेत्रीय असमानता, सामाजिक कारक, बीमारियों की प्रकृति आदि ऐसे महत्त्वपूर्ण कारक हैं, जो हमारी स्वास्थ्य व्यवस्था के बहुत गहराई से प्रभावित करते हैं। इसलिये इस बात पर बहुत तफ्तील से सोचने और बहस करने की जरूरत है कि हम किन संस्थागत माध्यमों और कतिनी कुशलता से जनता के स्वास्थ्य सेवाएं मुहैया कराते हैं।

अगर इस परिदृश्य में देखें, तो भारत में सरकार कुल व्यय का एक तिहाई से भी कम इन सेवाओं पर खर्च करती है। जबकि विकसित देश जैसे उत्तरी अमेरिका, यूरोपीय संघ के देशों में सरकारें स्वास्थ्य सेवाओं पर सत्तर से पचासी प्रतिशत तक खर्च उठाती हैं।

तीसरी बात हमारे यहां इन सेवाओं के निस्तारण में होने वाली अकुशलता और गैर-जवाबदेही से जुड़ी है। उदाहरण के लिये, अंतरराष्ट्रीय जनसंख्या विज्ञान संस्थान, मुंबई द्वारा इस विषय पर की गई एक सर्वेक्षण के अनुसार, सरकारी स्वास्थ्य केंद्रों के सुचारु रूप से काम करने के लिये आवश्यक संसाधनों का भारी अभाव पाया गया।

मूलभूत सुवधि जैसे बसिटर, उपकरण, जरूरी दवाइयां, टेलीफोन के साथ-साथ स्वास्थ्यकर्मियों, चिकित्सकों का इनमें अभाव है। यह कमी बिहार, मध्यप्रदेश, झारखंड, ओडिशा जैसे पछि राज्यों में चिंताजनक स्तर तक है। राजस्थान में की क सरवेक्षण में उन्होंने पाया कि कई जगहों पर प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र चिकित्सक या अन्य कार्यकर्ता के अभाव में बंद प हैं। ऐसे अन्य कई उदाहरण हैं, जो इस व्यवस्था की अकुशलता, सेवाओं का असमान वितरण, उनसे उपजे क्षेत्रीय असंतुलन जैसे कारकों को दर्शाते हैं। इसका नतीजा भी स्पष्ट देखने को मिला रहा है- नजि स्वास्थ्य क्षेत्र का कयम होता वरचस्व।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना की 2012 की रिपोर्ट के अनुसार स्वास्थ्य सेवा मुहैया कराने में नजि क्षेत्र की भागीदारी 75 प्रतिशत तक है और लगभग उतना ही प्रतिशत नजि स्तर पर कम या प्रैक्टिस करने वाले लोपैथिक चिकित्सकों का है। 1946 में स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं पर सुझाव के ल गठित भोरे समिति ने पहले ही इस समस्या पर बात की थी कि सरकारी चिकित्सक नजि प्रैक्टिस में लगे ह हैं।

क्षेत्रीय असमानता का कारण ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी चिकित्सकों की उदासीनता भी है, जिसकी पुष्टि 2011 में गठित उच्च स्तरीय स्वास्थ्य समिति की रिपोर्ट से होती है कि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सक और जनसंख्या का परस्पर अनुपात बहुत असमान है। विशेषज्ञ चिकित्सकों के चालीस प्रतिशत पद रिक्त प ह हैं। ऐसे में रोगी और उनके परिजनों के पास दो ही उपाय रह जाते हैं। या तो कर ले कर किसी नजि चिकित्सक के पास जा, शहर में रह कर इलाज करवा या फिर रोगी के मरने के ल नीम हकीम या घरेलू उपचारों पर छो दिया जा।

शायद इसी वजह से लोगों की आय का अधिकतर भाग स्वास्थ्य सेवाओं पर होने वाले खर्च में चला जाता है, जिससे उनकी बचत पर तो प्रभाव प ता ही है, जो गरीबी रेखा से नीचे है, उनके ल ये सेवा लेना असंभव हो जाता है। तमाम रिपोर्टों और स्वतंत्र रूप से की ग अध्ययनों से भी यह बात सिद्ध हो चुकी है कि नजि क्षेत्र के अस्पताल या चिकित्सक मनमानी फीस और अनावश्यक परीक्षण या महंगी दवाइयां बता कर पैसा वसूलते हैं। राष्ट्रीय नमूना सरवेक्षण के आंक बताते हैं कि उपचार पर औसत व्यय सरकारी क्षेत्र की तुलना में नजि क्षेत्र में ढाई गुना ज्यादा है। यह ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों की हकीकत है।

इन तमाम बातों के मद्देनजर, अगर हम स्वास्थ्य जैसी बुनियादी जरूरत को नागरिकों के अधिकार के रूप में देखना चाहते हैं (जैसा कि कांग्रेस ने अपने घोषणापत्र में कहा भी है) तो पहले हमें इस बात पर व्यापक चर्चा करने की जरूरत है कि उसे किन संस्थाओं के माध्यम से और कैसे लाया जा आशय यहां आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक तीनों संस्थाओं से है। भारत जैसे प्रजातंत्रिक समाजवादी देश में तो ये तीनों ही क दूसरे के अभिन्न अंग हैं।

फेसबुक पेज को लाइक करने के ल क्लिक करें- <https://www.facebook.com/Jansatta>

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के ल क्लिक करें- <https://twitter.com/Jansatta>